विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P5: भाषाविज्ञान**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M30: अनुवाद**
इकाई टैग	**HND_P5_M30**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**डॉ. उमाशंकर उपाध्याय** पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : usupadhyay@gmail.com
इकाई-लेखक	**प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी** पूर्व प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली ईमेल : kkgoswami1942@gmail.com
इकाई समीक्षक	**डॉ. उमाशंकर उपाध्याय** पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : usupadhyay@gmail.com
भाषा संपादक	**डॉ. उमाशंकर उपाध्याय** पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : usupadhyay@gmail.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. अनुवाद का स्वरूप और क्षेत्र
4. अनुवाद की प्रकृति
5. अनुवाद की प्रक्रिया
6. अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक की भूमिका
7. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- अनुवाद का अर्थ बता सकेंगे;

- अनुवाद के स्वरूप और क्षेत्र के बारे में जान सकेंगे;
- अनुवाद की प्रकृति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- अनुवाद की प्रक्रिया को समझ सकेंगे;
- अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक की भूमिका के बारे में जान सकेंगे।

2. प्रस्तावना

अनुवाद आधुनिक युग में एक सामाजिक आवश्यकता बन गया है। आज भूमंडलीकरण के कारण समूचा संसार 'विश्वग्राम' के रूप में उभर कर आया है। इसीलिए संसार के विभिन्न भाषा-भाषी समुदाय एक-दूसरे के निकट आ गए हैं। साथ ही विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रों में अनुवाद की महत्ता में भी वृद्धि हुई है। यही कारण है कि अनुवाद की सार्थकता और प्रासंगिकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यद्यपि इसके सैद्धांतिक पक्ष और विधि-प्रविधि के बारे में काफी चिंतन और मनन हुआ है। अनुवाद क्या है, अनुवाद की प्रक्रिया क्या है, इस प्रक्रिया में क्या कठिनाई आती है, अनुवाद की व्यावसायिकता से क्या अभिप्राय है आदि ऐसे अनेक आयाम हैं, जिनका विवेचन और विवरण तो मिल जाता है, किंतु फिर भी अनुवाद का दर्शन न तो स्पष्ट हो पाया है और न ही बोधगम्य। वास्तव में अनुवाद की परिभाषा, स्वरूप, प्रकृति, क्षेत्र आदि के विवेचन में अनुवादविज्ञान और अनुवादशास्त्री इतने उलझ गए हैं कि वे अनुवाद के दर्शन को पूर्णतया समझ नहीं पाए, क्योंकि अनुवाद में इन सैद्धांतिक संदर्भों के अतिरिक्त इसके व्यावहारिक पक्ष को साधना सरल और सुगम कार्य नहीं है। सफल अनुवाद का संबंध व्यवहार पक्ष से है और इसीलिए अनुवाद के सिद्धांत और व्यवहार पक्ष के संबंधों और उनके परस्पर सामंजस्य को ध्यान में रखकर सार्थक विवेचन करने की आवश्यकता है ताकि अनुवाद प्रक्रिया स्पष्ट हो सके। कुछ विद्वानों ने अनुवाद को अर्थांतरण अथवा 'भाषिक प्रतिस्थापन' की संज्ञा दी है, किंतु अनुवाद न तो अर्थांतरण है और न ही भाषिक प्रतिस्थापन। वस्तुत: भाषा की प्रकृति ऐसी स्थिर, निष्क्रिय और समरूपी नहीं है कि एक भाषा की इकाई का दूसरी भाषा की इकाई में प्रतिस्थापन या अंतरण किया जा सके। भाषा ऐसी निष्क्रिय ग्रहीता नहीं है और न ही सामान्य माध्यम या उपकरण है जो किसी अन्य भाषा के कथ्य को बिना किसी टकराव या संघर्ष के अपने भीतर समेट ले। भाषा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, परंपरागत और भौगोलिक परिवेश में पलती और पनपती है इसलिए प्रथम भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा में प्रतिस्थापित या प्रत्यारोपण करना सरल नहीं है। इसके अतिरिक्त अनुवाद के लिए भाषा उस मिट्टी के समान भी नहीं है जिसके सहारे मूर्तिकार मूर्ति का निर्माण करता है। अनुवाद सादृश्यधर्मी सर्जनात्मक प्रक्रिया है जिसमें भाषा सशक्त, सक्रिय और जीवंत माध्यम के रूप में इस्तेमाल होती है। यहाँ यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि यह सर्जनात्मक प्रक्रिया ललित साहित्य अर्थात् कविता, नाटक, कथा साहित्य आदि के संदर्भ में तो उचित है तो क्या यह ज्ञान साहित्य अर्थात् विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, जनसंचार, विधि, प्रशासन आदि के अनुवाद में भी उतनी ही सार्थक है? यह प्रश्न हमारे सामने मुँह बाए खड़ा है, जिसमें भाषा की विभिन्न प्रयुक्तियों के संदर्भ में अनुवाद संबंधी उठने वाली कठिनाइयों पर गंभीरतापूर्वक चिंतन और मनन करना आवश्यक हो गया है जिससे अनुवाद का सैद्धांतिक संदर्भ परिपुष्ट, सार्थक और कारगर हो सके।

3. अनुवाद का स्वरूप और क्षेत्र

'अनुवाद' संस्कृत भाषा का तत्सम शब्द है, किंतु संस्कृत में वह उसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता, जिस अर्थ में वह हिंदी में प्रयुक्त होता है। संस्कृत में अनुवाद का शब्दार्थ है (किसी के) कहने या बोलने के बाद 'बोलना' अथवा 'किसी कही हुई बात के बाद कहना'। इस भाव को व्यक्त करने वाला अन्य रूप है 'पुन: कथन'। संस्कृत के कुछ शब्दकोशों

में इसका अर्थ 'प्राप्तस्य पुन: कथनम्' अथवा 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादनम्' अभिव्यक्ति के रूप में मिलता है। प्राचीन काल में हमारे देश भारत में गुरुकुल में शिक्षा का प्रचलन था और यह शिक्षा मौखिक परंपरा में थी। गुरु अथवा आचार्यगण प्राय: जो कुछ छात्रों को पढ़ाते या जिन मंत्रों का उच्चारण कराते, शिष्यगण गुरु के उन कथनों के पीछे-पीछे दुहराते थे। इसी को अनुवचन अथवा अनुवाद कहा जाता था। इसके अतिरिक्त अनुवाद का प्रयोग 'व्याख्या' या 'टीका' या 'भाष्य' के अर्थ में भी होता था, जिसका प्रयोग पहले कही गई बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए अथवा एक बात की पुष्टि में दूसरी बात की पुन: व्याख्या के लिए होता था। आज के संदर्भ में इसे 'अन्वयांतर' अथवा 'अंत:भाषिक अनुवाद' की संज्ञा दी गई है।

हिंदी में 'अनुवाद' शब्द अंग्रेजी के 'ट्रांसलेशन' शब्द के पर्याय के रूप में अपनाया गया है। अंग्रेजी में एक भाषा के पार (trans) दूसरी भाषा में ले जाने (lation) की प्रक्रिया के लिए 'ट्रांसलेशन' शब्द प्रयुक्त होता है। हिंदी में अनुवाद का शब्दार्थ हो गया- एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में कहना।

भारत और पाश्चात्य देशों में धार्मिक और सर्जनात्मक साहित्य के अनुवाद का श्रीगणेश सबसे पहले हुआ है। भारत में तो प्राचीन काल से आज तक अनुवाद कार्य अधिक मात्रा में हुआ है, किंतु उसका कोई ठोस सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत नहीं हो पाया। यूरोप में भी प्राचीन काल से अनुवाद की परंपरा प्रारंभ हुई, किंतु मध्यकाल में बाइबिल के अनुवाद के साथ-साथ अन्य विधाओं के बहुत अच्छे अनुवाद किए गए हैं। इस दौरान अनुवादकों ने अत्यंत निष्ठा से सुंदर और कालजयी अनुवाद किया और अपने अनुभवों के आधार पर अपने सैद्धांतिक विचारों का खुलकर प्रतिपादन भी किया। सोलहवीं शताब्दी को यूरोप में 'अनुवाद का स्वर्णिम युग' माना जाता है। सेंट जेरोम, मार्टिन लूथर, एतीने दोले, ड्राइडन, एलेक्जेंडर पोप, मैथ्यु आर्नल्ड आदि अनुवादकों और साहित्यकारों ने अनुवाद में मूल पाठ की आत्मा को सर्वोपरि माना है। प्रारंभ मे शब्दानुवाद पर अधिक बल दिया गया, किंतु बाद में उसे नकार कर भावानुवाद को सर्वोत्तम माना गया। सर्जनात्मक साहित्य के अनुवाद में मूल पाठ की चेतना तथा ऊष्मा पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया। इसी संदर्भ में एडवर्ड फिट्ज़जेराल्ड ने तो यहाँ तक कह दिया कि "भूसा भरे बाज़ से जीवित गौरेया बेहतर है" (Better a live sparrow than a stuffed eagle)

उन्नीसवीं शताब्दी तक अनुवाद संबंधी जो चिंतन हुआ, वह मुख्यत: छुटपुट ही रहा। अनुवादशास्त्रियों ने अपने अनुभव के आधार पर अपने विचार प्रस्तुत किए, किंतु वह कोई वैज्ञानिक चिंतन नहीं था। अनुवाद संबंधी सिद्धांतों पर स्वतंत्र चिंतन वस्तुत: बीसवीं शताब्दी से आरंभ हुआ। इस शताब्दी में पहले साहित्यिक दृष्टि से मुख्य रूप से विचार करने वाले युजीन ए नाइडा और जे. सी. कैटफर्ड भाषाविज्ञानी और अनुवादविज्ञानी हैं। इन दोनों अनुवादज्ञानियों ने समतुल्यता के आधार पर अनुवाद की परिभाषाएँ दी हैं। अमरीकी विद्वान नाइडा और चार्ल्स टेबर के अनुसार अनुवाद का आशय स्रोत भाषा के संदेश के संग्राहक भाषा में पहले अर्थ और गौणत: शैली की दृष्टि से निकटतम सहज समतुल्य पुनरोत्पादन से है- (Translation consists in reproducing in the receptor language the closest natural equivalent to the message of the source language, first in terms of meaning and secondly in terms of style)। ब्रिटिश विद्वान कैटफर्ड ने अनुवाद को एक भाषा की पाठ्य सामग्री का दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ्य सामग्री में प्रतिस्थापन माना है (The replacement of textual material in one language by equivalent textual material in another language)। इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि अनुवाद का संबंध स्रोत भाषा के पाठ से लक्ष्य भाषा के पाठ में अंतरण से है। जिस भाषा में मूलपाठ है वह स्रोत भाषा है और जिस भाषा में मूलपाठ का अनुवाद करना है, वह लक्ष्य भाषा है। स्रोत भाषा से

लक्ष्य भाषा में मूलपाठ का अंतरण इस ढंग से किया जाए कि जो कुछ कहा गया है, न केवल उसे सुरक्षित रखा जाए वरन् कैसे कहा गया है, उसे भी ध्यान में रखा जाए। इस प्रकार अनुवाद में विषयवस्तु और शैली दोनों का अपना महत्व है। यदि अनुवाद में 'अंतरण' नहीं हो पाता तो 'प्रतिस्थापन' या 'पुनरोत्पादन' किया जाए। यह इन दोनों विद्वानों का मूल आशय है। नाइडा और टेबर ने लक्ष्य भाषा के स्थान पर जो संग्राहक भाषा कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा का पूर्ण कथ्य समेटा जाता है जबकि स्रोत भाषा के कथ्य को लक्ष्य भाषा में पूर्णतया नहीं समेटा जा सकता। अत: संग्राहक भाषा की जितनी ग्रहणशक्ति है, कथ्य उतना ही समेटा जा सकता है। अनुवाद से यह भी अपेक्षा रहती है कि स्रोत भाषा में कही गई बात का जो प्रभाव स्रोत भाषा के पाठक पर पड़ता है, उसी बात का वही प्रभाव लक्ष्य भाषा के पाठक पर पड़े। इसी परिप्रेक्ष्य में भाषिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य संदर्भपरक आयामों से गुजरना पड़ता है ताकि स्रोत भाषा की पाठ्य-सामग्री की अभिव्यक्ति लक्ष्य भाषा में पूर्णतया समान रूप से हो सके। इस समान अभिव्यक्ति का आशय निकटतम एवं सहज अभिव्यक्ति से है। इसी परिप्रेक्ष्य में समतुल्यता की अवधारणा ने अनुवाद के सिद्धांत को काफी हद तक स्पष्ट किया है। अत: अब इसकी अनुवाद की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है- स्रोत भाषा में व्यक्त पाठ्यसामग्री का पुन:सृजन लक्ष्य भाषा की पाठ्यसामग्री में निकटतम समतुल्यता के आधार पर करना अनुवाद है।

अनुवाद के स्वरूप पर चर्चा करते हुए यह बताना आवश्यक है कि अनुवाद का अपना सिद्धांत है, किंतु यह मात्र सिद्धांत नहीं है, वरन् उस सिद्धांत का प्रणालीगत प्रतिफलन भी है। वास्तव में अनुवाद के लिए प्रयोक्ता-सापेक्ष होना जरूरी है, क्योंकि सिद्धांत और प्रणाली एक दृष्टि से अन्योन्याश्रित होते हैं। जहाँ तक सिद्धांत और प्रणाली के सोपानक्रम का संबंध है प्रणाली सदैव सैद्धांतिक लक्ष्य से नियंत्रित होकर अपना विकास करती है। वैसे तो सिद्धांत हमेशा लक्ष्य के साथ जुड़ा होता है और इसीलिए कुछ क्षेत्रों में यह लक्ष्य स्वयं में अपना सिद्धांत होता है। गणित और तर्कशास्त्र जैसे विषय-क्षेत्र शुद्ध वैज्ञानिक सिद्धांतके क्षेत्र हैं, किंतु सिद्धांत किसी व्यावहारिक लक्ष्य की सिद्धि का कारण भी होता है और इसी कोटि के अंतर्गत अनुवाद का क्षेत्र आता है। अनुवाद का लक्ष्य डॉ. जॉनसन के अनुसार 'एक भाषा का रूपांतरण दूसरी भाषा में होना अनुवाद है, लेकिन भावार्थ को बनाए रखा जाए (To change into another language retaining the sense)। डॉ. जॉनसन के कथन में अतिव्याप्ति दोष है, क्योंकि भाषाओं के इस आदान-प्रदान को हम कैसे प्रभावित करते हैं ओर दूसरी भाषा में भावार्थ का कितना अंश समाहित होता है, इसकी कोई कसौटी नहीं है।

अनुवाद के स्वरूप के विवेचन में फर्दीना द सस्यूर द्वारा प्रतिपादित भाषा प्रतीक की संकल्पना पर विचार करना होगा। इस भाषिक प्रतीक की अवधारणा त्रिवर्गीय संकेतन इकाइयों के संबंधों पर आधारित है। त्रिवर्गीय इकाइयाँ हैं- संकेतित वस्तु, संकेतार्थ और संकेतन प्रतीक। 'संकेतित वस्तु' का संबंध बाह्य जगत् की वास्तविक और यथार्थमय वस्तुओं से है, जैसे- कमल, घोड़ा, आदमी। 'संकेतार्थ' से अभिप्राय प्रयोक्ता के मन में संकेतित वस्तु का बिंब या उसकी मानसिक संकल्पना से है। 'संकेतन प्रतीक' इस संकेतार्थ को भाषिक ध्वनियों के माध्यम से अभिव्यक्ति देने वाली इकाई है, जो संकेतित वस्तु के स्थान पर विशिष्ट संदर्भों में प्रयुक्त होती है। संकेतित वस्तु के लिए संकेतन प्रतीक के रूप में अनेक पर्याय अथवा शब्द अथवा अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए, संकेतित वस्तु के 'घोड़ा' के लिए संस्कृत में 'अश्व', अंग्रेजी में 'हार्स', तेलुगु में 'गुर्रम', फ्रांसीसी में 'शेवाल' आदि शब्द या अभिव्यक्तियाँ हैं। इस दृष्टि से संकेतित वस्तु और संकेतार्थ एक साथ मिलकर अर्थ अथवा कथ्य का रूप ले लेते हैं। कथ्य के साथ अभिव्यक्ति का समन्वित होना या समाहित होना ही भाषिक प्रतीक है। इस भाषिक प्रतीक में बाह्य जगत् की वस्तुओं के साथ साथ प्रयोक्ता के जातीय इतिहास, उसकी सभ्यता, उसके समाज और संस्कृति का भी योगदान

रहता है। इसी कारण संकेतार्थ में अर्थ की अगाध और असीम संभावनाएँ निहित रहती हैं जो मुख्यत: कोशगत अर्थ, संरचनात्मक अर्थ, सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ और लाक्षणिक एवं व्यंजनापरक अर्थ को अपने भीतर समेटे रहती हैं।

इस प्रकार इस त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों से दो भिन्न प्रतीक व्यवस्थाओं द्वारा दो भिन्न रूपों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। कथ्य का भाषांतरण अनुवाद है, जिसे डब्ल्यु हास ने अनुवाद की संक्रिया में दो अभिव्यक्तियों और एक कथ्य की भूमिका को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कथ्य (अर्थ) को एक भाषा जिस रूप में अभिव्यक्ति देती है, उससे भिन्न रूप में अन्य भाषा अभिव्यक्ति दे सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि कथ्य को समान रूप में ग्रहण कर उसे दो भिन्न प्रतीक व्यवस्थाओं द्वारा दो भिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसे आरेख द्वारा समझा जा सकता है-

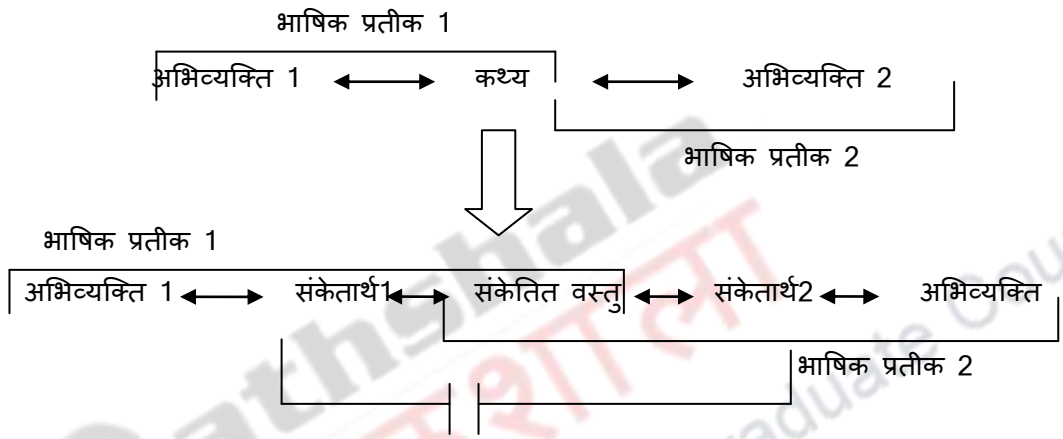

उपर्युक्त आरेख में संकेतित वस्तु का संबंध संकेतार्थ1 और संकेतार्थ 2 दोनों से है। बाह्य जगत् की वस्तु के रूप में संकेतार्थ1 और संकेतार्थ2 एक हैं, जो एक ही संकेतित वस्तु (जैसे- पक्षी उल्लू) की ओर इंगित करते हैं, किंतु भाषिक प्रतीक 1 (अर्थात हिंदी) में संकेतित वस्तु के संकेतार्थ1 के अन्य आयाम अर्थात् लाक्षणिक एवं व्यंजनापरक अर्थ एक अलग अर्थ या भाव (अर्थात् मूर्ख) प्रस्तुत करता है, जबकि भाषिक प्रतीक2 (अर्थात् जापानी) में संकेतित वस्तु का संकेतार्थ2 के अन्य आयाम अर्थात् लाक्षणिक एवं व्यंजनापरक अर्थ एक दूसरा अर्थ या भाव (अर्थात् बुद्धिमान) प्रस्तुत करता है। अत: संकेतित वस्तु के साथ दो संकेतार्थों के जुड़ने से संकेतित वस्तु को एक बनाए रखना नहीं है, वरन् संकेतार्थ1 और संकेतार्थ2 को एक बनाए रखने से अनुवादकी संभावना हो सकती है, क्योंकि दोनों संकेतार्थ अपने-अपने भाषिक प्रतीक में अपना-अपना विशिष्ट कथ्य या भाव लिए हुए हैं। उसके शब्दों और वाक्यों के साथ ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य लिपटे होते हैं, जिनसे दोनों संकेतार्थों को एक समान लाने में व्याघात उत्पन्न होता है। इसी कारण समतुल्यता सिद्धांत और भाषाविज्ञान से संबद्ध व्यतिरेकी विश्लेषण के द्वारा एक भाषा के पाठ की प्रतीक योजना का अंतरण या प्रतिस्थापन या पुन:सृजन अन्य भाषा की प्रतीक योजना में किया जाता है। अर्थ की निकटतम सादृश्यता समतुल्यता है, जिसमें अभिव्यक्ति के स्तर के साथ-साथ कथ्य की सादृश्यता भी होती है। व्यतिरेकी विश्लेषण में दोनों भाषाओं की विषमताओं और समानताओं को देखा जाता है और उनके विश्लेषण के आधार पर दोनों भाषाओं के संकेतार्थ को एक समान लाने का प्रयास रहता है। इन दोनों आधारों पर अनूदित पाठ मूल पाठ के सहपाठ के रूप में सामने आता है। इस प्रकार अनुवाद भाषिक प्रतीकों का वह व्यापार है जिसमें एक भाषा में व्यक्त अनुभवों और भावों को दूसरी भाषा में संप्रेषित किया जाता है। इसमें स्रोत भाषा और

लक्ष्य भाषा तो अनिवार्य होते हैं उनके साथ दोनों भाषाओं के सामाजिक-सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक आदि जो संदर्भ और परिवेश होते हैं वे प्राय: एक समान नहीं होते। अत: दोनों भाषाओं की विशिष्टताओं पर विशेष ध्यान देना होगा, अन्यथा इन भाषाओं के भाषायी संस्कारों पर कुठाराघात होगा और अनुवाद की संप्रेषणीयता तथा बोधगम्यता में बाधा पड़ेगी। इस प्रकार अनुवाद के स्वरूप को समझने के लिए भाषादर्शन और अनुवाददर्शन दोनों को समझना होगा।

अनुवाद को व्यापक संदर्भ और सीमित संदर्भ में देखा जाता है। व्यापक संदर्भ में अनुवाद को प्रतीक सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है अर्थात् कथ्य का प्रतीकांतरण अनुवाद है। सीमित संदर्भमें अनुवाद को भाषायी सिद्धांत के साथ जोड़ा गया है। इसमें कथ्य का भाषांतरण होता है। सुविख्यात भाषाविज्ञानी रोमन यकोब्सन ने भाषिक पाठ का प्रतीकांतरण तीन रूपों में किया है-

1. भाषिक अनुवाद (Intralingual Translation)
2. अंतरभाषिक अनुवाद (Interlingual Translation)
3. अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद (Intersemiotic Translation)

अंत:भाषिक अनुवाद किसी एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण है। इसमें एक भाषा के भीतर एक ही कथ्य को उसी भाषा की अन्य शैली, बोली, विधा आदि में व्यक्त किया जाता है। इसे 'अन्वयांतर' भी कहते हैं। यह एक प्रकार का विवेचन या अन्यकथन है। संस्कृत में किसी कृति का जो भाष्य या टीका लिखी जाती थी, वह भी एक प्रकार का अंत:भाषिक अनुवाद था। किसी एक भाषा में पद्य रूप का गद्य में, नाटक का कहानी विधा में, औपचारिक शैली का अनौपचारिक शैली में, सामान्य शैली का प्रयोजनपरक शैली में, भाषा अथवा उसकी बोली के पाठ को दूसरी बोली में अर्थात् हिंदी भाषा से ब्रज में, अवधी से भोजपुरी या खड़ीबोली से मेवाड़ी में किए गए रूपांतरण अत:भाषिक अनुवाद के उदाहरण हैं। शेक्सपियर के अनेक गीति-नाट्यों का अंग्रेजी साहित्यकार चार्ल्स लैंब ने गद्य में रूपांतरण किया था। अमेरिकी विद्वान जॉन क्रोथर ने शेक्सपियर के कुछ गीतिनाट्यों के अतिरिक्त उनके अनेक सानेटों का भी गद्यानुवाद किया। इसी प्रकार प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यासों का लेखन उर्दू शैली में हुआ था। बाद में प्रेमचंद ने स्वयं उनका अन्वयांतर हिंदी में किया।

अंतर भाषिक अनुवाद एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था के अर्थ का दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण है जो वास्तव में भाषांतर है। रोमन याकोब्सन ने सीमित संदर्भ में इसे वास्तविक अनुवाद की संज्ञा भी दी है। स्रोत भाषा के पाठ का लक्ष्य भाषा में समतुल्यता के आधार पर इस प्रकार अंतरण होता है कि मूल पाठ का संप्रेषणीय कथ्य अनूदित पाठ में प्रतिस्थापित हो जाए। इसलिए अनुवाद का भाषिक संदर्भ अंतरण की अपेक्षा प्रयोजन और प्रकार्य की दृष्टि से प्रतिस्थापन पर बल देता है, क्योंकि दोनों भाषाओं के समकक्ष पर्याय निकटतम समतुल्य नहीं होते और निकटतम समतुल्य समकक्ष पर्याय नहीं होते। स्रोत भाषा की सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की अंतरण-प्रक्रिया की अपेक्षा प्रतिस्थापन प्रक्रिया अधिक प्रभावकारी होती है। उदाहरण के लिए; 1 रामबाण औषधि, 2 शीला गाय है आदि के लिए क्रमश: 1 Medicine as a panacea, 2 Shiela is as gentle as a lamb एक प्रकार से प्रतिस्थापन के उदाहरण हैं। अंतरभाषिक अनुवाद में कभी-कभी अंतरण और प्रतिस्थापन के बजाय व्याख्या और पुन:सृजन की प्रक्रिया भी होती है।

अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद में एक भाषिक प्रतीक होता है और दूसरा भाषेतर प्रतीक। चित्रकला, नृत्यकला, संगीतकला आदि में भावों या विचारों की अभिव्यक्ति होती है। इनमें भाषिक ध्वनियों का प्रयोग नहीं होता, इसलिए ये सभी भाषिक प्रतीक हैं। इन प्रतीकों का रूपांतरण प्रतीकांतरण है अर्थात् भाषिक प्रतीक के कथ्य का अंतरण भाषेतर प्रतीक में करना अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद है। उदाहरण के लिए, सडकों पर वाहनों को चलने या रोकने के लिए भाषिक प्रतीकों के द्वारा बताने के बजाय 'हरी बत्ती' या 'लाल बत्ती' का प्रयोग होता है। ये 'हरी बत्ती' और 'लाल बत्ती' भाषेतर प्रतीक हैं। इसी प्रकार कवि के भावों या विचारों को चित्रकार अपनी कूची से चित्र में व्यक्त करता है, संगीतकार नाद संयोजन से और नर्तक या नृत्यांगना अपने नृत्य से व्यक्त करते हैं। संस्कृत और हिंदी में रचित रामायण, महाभारत, देवदास, मैला आँचल, रागदरबारी आदि कृतियों के फिल्मीकरण और टेलीविजनीकरण अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद के उदाहरण हैं।

इस प्रकार अनुवाद का स्वरूप और क्षेत्र व्यापक हैं। इसमें स्रोत भाषा के मूल पाठ के भाषिक अर्थ, लक्षणापरक और व्यंजनापरक अर्थ, विषय-वस्तु तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ शैली एवं प्रयुक्ति की विशिष्टता को यथासंभव सुरक्षित रखते हुए पुन:सृजन किया जाता है।

4. अनुवाद की प्रकृति

अनुवाद की प्रकृति के बारे में प्राय: यह प्रश्न उठता है कि यह कला है या विज्ञान या शिल्प या इन तीनों की मिश्रित विधा। वस्तुत: अनुवाद एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है, जिसमें एक ओर इसके दोहरे संप्रेषण-व्यापार का संदर्भ मिलता है तो दूसरी ओर इसके क्रिया-व्यापार की दोहरी भूमिका दिखाई देती है। इसी प्रकार अनुवाद-सामग्री के रूप में हमें एक ओर सर्जनात्मक व्यापार की अलौकिक साहित्यिक रचना मिलती है तो दूसरी ओर तर्क-चिंतन के कार्य-कारण संबंधों पर आधारित वैज्ञानिक पाठ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान युग में प्रशासन, वाणिज्य-व्यापार, जनसंचार आदि के कार्यकलापों के आदान-प्रदान से सूचनापरक सामग्री उपलब्ध होती है। इन सभी तथ्यों से जहाँ अनुवाद सिद्धांत को व्यापक आधार मिला है, वहाँ पाठ की विशिष्टता के आधार पर वह विशेषीकृत भी बना है। इसलिए अनुवाद की प्रकृति के बारे में विभिन्न विचारधाराओं का उभरना स्वाभाविक है।

अनुवाद को कला मानने वाले विद्वानों के मतानुसार अनुवाद एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें अनुवादक अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से अनूदित पाठ को नया रूप प्रदान करता है और एक ही विषय को विभिन्न शैलियों में सँजोता और सँवारता है। थियोडर सेवरी जैसे विद्वान अनुवाद को कला मानते हुए अनूदित सामग्री के रूप में साहित्य को संदर्भ बनाते हैं, क्योंकि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अधिकतम अनुवाद सर्जनात्मक साहित्य का होता रहा है। अनुवाद को विज्ञान के रूप में स्थापित करने में युजीन ए. नाइडा का प्रमुख स्थान है। व्यापक संदर्भ में संप्रेषण-व्यापार का विवेचन करते हुए विज्ञान-समर्थक विद्वानों ने अनुवाद को संप्रेषण-व्यापार की एक उपश्रेणी कहा है। इस संप्रेषण-प्रक्रिया में विकोडीकरण (Decoding) और कोडीकरण (Encoding) की अवधारणा के आधार पर अनुवाद में पहले स्रोत भाषा के पाठ का विकोडीकरण होता है और बाद में कोडीकरण के माध्यम से उससे व्यक्त अर्थ की पुनर्रचना या पुनर्गठन लक्ष्य भाषा के पाठ में होती है। इस पूरी प्रक्रिया में ठीक वही प्रणाली अपनाई जाती है जो व्यतिरेकी विश्लेषण अथवा तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन में प्रयुक्त होती है। अनुवाद की वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक अन्य आधार उसकी वैज्ञानिक तकनीक है जिससे आज अनुवाद का मशीनी पक्ष विकसित हो गया है और इसी कारण आज मशीनी अनुवाद का विकास हो पा रहा है। अनुवाद को शिल्प या कौशल मानने वाले विद्वानों के मतानुसार अनुवादक तो अनुवादक होता है, न कि सर्जक, साहित्यकार या तर्कप्रवण वैज्ञानिक। किसी भी द्विभाषिक

को पर्याप्त प्रशिक्षण और अभ्यास द्वारा अनुवादक बनाया जा सकता है जबकि कला और विज्ञान का आधार मात्र प्रशिक्षण नहीं है। विद्वानों का एक अन्य वर्ग अनुवाद को न केवल प्रायोगिक मानता है, वरन् इसे अपनी प्रकृति में मिश्रित (Eclectic) विधा स्वीकार करता है। इन विद्वानों के मतानुसार अनुवादक से एक साथ साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा, वैज्ञानिक की तर्कणाशक्ति, उपयोगी कला में पाई जाने वाली शिल्पगत दक्षता आदि सभी गुणों से युक्त होने की अपेक्षा होती है, क्योंकि अनुवाद एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है और उसके विभिन्न चरणों पर अनुवादक को विभिन्न भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। अत: अनुवाद और अनुवादक की मिश्र भूमिका उपर्यक्त तीनों वर्गों के संमिश्रण और समन्वयन का परिणाम होती है।

वास्तव में अनुवाद की प्रक्रिया पाठ-सापेक्ष होती है। सर्जना के संदर्भ में साहित्यिक पाठ के अनुवाद को कला की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इसमें अनुवादक के व्यक्तित्व का तादात्म्य मूल लेखक के व्यक्तित्व के साथ होता है और यह अनुवाद अनुवादक सापेक्ष होता है। इसके विपरीत विज्ञान का निरूपण प्रामाणिक, तथ्यपरक और तर्कपूर्ण होता है, जिसमें भाषावैज्ञानिक सिद्धांत लागू होते हैं। इसके अलावा मूर्तिकला, हस्तकला आदि अभ्यास से सीखे हुए कौशल अपने-अपने में प्रकार्यात्मक हैं। इसलिए विज्ञानपरक और सूचनापरक पाठ्य-सामग्री के अनुवाद में सदैव अनुवादक के व्यक्तित्व का लोप दिखाई देता है, क्योंकि इस साहित्य में अनुवादक अपने व्यक्तित्व को नकार कर ही सफल अनुवादक बन सकता है। इस प्रकार अनुवाद कला, विज्ञान और शिल्प की समन्वित या मिश्रित विधा नहीं है, वरन् पाठ्य-सामग्री के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद कला, विज्ञान और शिल्प के रूप में अपनी अलग-अलग सत्ता रखता है।

5. अनुवाद प्रक्रिया

अनुवाद प्रक्रिया से अभिप्राय अनुवाद की विधि अथवा प्रविधि से है। इस प्रक्रिया में संदेश लक्ष्य होता है, संरचना माध्यम और अंतरण प्रतिधि है। इस प्रक्रिया का सर्वप्रथम विवेचन अमरीकी भाषाविज्ञानी युजीन ए. नाइडा ने किया था। नाइडा ने अनुवाद को एक वैज्ञानिक तकनीक के रूप में मानते हुए इसकी प्रक्रिया के तीन सोपान बताए हैं- (1) विश्लेषण (Analysis), (2) अंतरण (Transference), और (3) पुनर्गठन (Restructuring) इन तीनों सोपानों का एक निश्चित क्रम है। इन्हें इस प्रकार बताया जा सकता है-

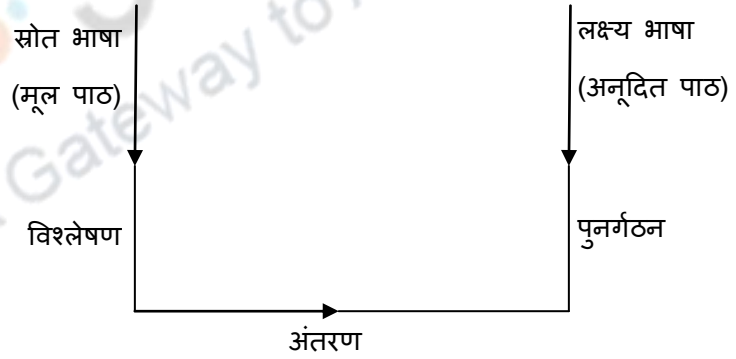

विश्लेषण सोपान: स्रोत भाषा के मूल पाठ का अर्थ ग्रहण करने के लिए सबसे पहले अनुवादक मूल पाठ का विश्लेषण ज्ञात या अज्ञात रूप से करता है। मूल पाठ के विश्लेषण के लिए भाषासिद्धांत तथा उसमें पाई जाने वाली विश्लेषण तकनीक का प्रयोग होता है। पाठ की अभिव्यक्ति की विभिन्न इकाइयों अर्थात् ध्वनि-संयोजन, रूप-प्रक्रिया, शब्द-

संस्कार, वाक्य-विन्यास, प्रोक्ति संरचना आदि का विश्लेषण होता है ताकि उसके अर्थ की प्राप्ति हो सके। इसके साथ-साथ विषय वस्तु के अनुरूप अर्थ ग्रहण किया जाता है। प्रशासन, विज्ञान, जनसंचार, वाणिज्य आदि विषयों की भाषा निश्चित और सीमित अर्थतंत्र लिए होती है, अत: विषय-वस्तु का ज्ञान होने पर सटीक अर्थ की प्राप्ति में सुविधा रहती है।

अंतरण सोपान: अर्थ ग्रहण करने के पश्चात अनुवादक लक्ष्य भाषा में उसका अंतरण करने लगता है। यह अनुवाद का दूसरा चरण है जिसमें भाषाओं की आर्थी संरचनाओं में परस्पर टकराहट होती है। भाषायी और सामाजिक-सांस्कृतिक टकराहट की प्रकृति को ठीक से समझे बिना अर्थांतरण नहीं हो पाता। इसमें अनुवादक की द्विभाषिक क्षमता की नितांत अपेक्षा रहती है। इसमें मूल पाठ के अर्थ के अनुरूप लक्ष्य भाषा में उस अभिव्यक्ति को ढूँढना पड़ता है जो मूल पाठ के अर्थ के समान हो। यहाँ पर समतुल्यता का सिद्धांत और व्यतिरेकी विश्लेषण काफी हद तक कारगर सिद्ध होता है। समतुल्यता सिद्धांत में भाषापरक समतुल्यता, भावपरक समतुल्यता, शैलीपरक समतुल्यता और पाठपरक समतुल्यता की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसी प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण में दोनों भाषाओं की समानताओं और असमानताओं का रूपपरक और संदर्भपरक विश्लेषण होता है जो स्रोतभाषा के अर्थ को लक्ष्य भाषा में लाने में सहायक होता है।

पुनर्गठन सोपान : यह अनुवाद का तीसरा चरण है। नाइडा द्वारा प्रतिपादित तीसरे चरण 'रिस्ट्रक्चरिंग' का हिंदी पर्याय 'पुनर्गठन' रखा गया है, किंतु पुनर्गठन में पाठ की सर्जनात्मकता और अनुवाद की रचनात्मक कला का अर्थ समाहित नहीं होता, इसलिए 'पुनर्गठन' के स्थान पर यहाँ 'पुनर्रचना' पर्याय अधिक उपयुक्त होगा। अंतरण के बाद संदेश को लक्ष्य भाषा की प्रकृति ओर नियमों के अनुसार पुन: व्यवस्थित करना पड़ता है। मूल पाठ के संदेश को लक्ष्य भाषा के अभिव्यक्ति संस्कार से जोड़ना पड़ता है ताकि अनूदित पाठ सहज, स्वाभाविक, बोधगम्य और संप्रेषणीय बन सकें। भाषिक रूपों के व्याकरणिक संबंध, उनके संदर्भपरक अर्थ और इन दोनों के लक्ष्यार्थ मूल्यों पर ध्यान देना ही पुनर्रचना है। इसके अतिरिक्त पुनर्रचना में स्रोत भाषा पाठ के अर्थ-संप्रेषण के साथ-साथ भाषा का शैली संस्कार भी होता है जो उसे सुंदर और प्रभावोत्पादक बनाता है।

एक अन्य अमरीकी विद्वान पीटर न्यूमार्क ने अनुवाद प्रक्रिया के चार सोपानों या चरणों की संकल्पना प्रस्तुत की है- मूल भाषा पाठ, बोधन व्याख्या, अभिव्यक्ति पुन:सृजन और लक्ष्य भाषा पाठ। वास्तव में नाइडा और न्यूमार्क में कोई मौलिक अंतर नहीं है। बोधन एक व्याख्या है, जो नाइडा का विश्लेषण सोपान है और अभिव्यक्ति पुन:सृजन नाइडा का पुनर्गठन है। नाइडा ने भाषायी सिद्धांत को विशेष महत्व दिया है जबकि न्यूमार्क ने भाषायी सिद्धांत की अपेक्षा पाठ की प्रकृति और उसके संदेश पर अधिक बल दिया है। इस प्रकार न्यूमार्क का चिंतन अधिक व्यापक है। एक अन्य विद्वान आर. एच. बाथगेट ने अनुवाद की व्यावहारिक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उसके नौ सोपान बताए हैं-

- मूलभाषा पाठ
- समन्वयन
- विश्लेषण
- बोधन
- पारिभाषिक अभिव्यक्ति
- पुनर्रचना पुनरीक्षण

- पर्यालोचन
- लक्ष्य भाषा पाठ

बाथगेट के ये सोपान वास्तव में नाइडा के तीन सोपानों की व्याख्या हैं जो अनूदित पाठ को मूल पाठ का सहपाठ बनाने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं।

6. अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक की भूमिका

अनुवाद में दो भाषाओं का जो संप्रेषण व्यापार होता है, उससे दो प्रकार के पाठों का सामना करना पड़ता है। मूल पाठ स्रोत भाषा में किसी अन्य लेखक द्वारा रचित होता है और अनुवादक उस मूल पाठ के पाठक के रूप में उसका विश्लेषण करता है और उसमें अंतर्निहित कथ्य को समझने और पकड़ने का प्रयास करता है। तत्पश्चात् अनुवादक उस पाठ का लक्ष्य भाषा में अर्थांतरण करने के लिए द्विभाषिक की भूमिका निभाता है। मूल पाठ के कथ्य का अंतरण करते हुए वह अनूदित पाठ को लक्ष्य भाष के पाठ में इस प्रकार पस्तुत करता है, जिससे वह मूल पाठ का सहपाठ बन सके और साथ ही लक्ष्य भाषा के पाठकों के लिए बोधगम्य और संप्रेषणीय हो सके। इस पुनर्रचना में अनुवाद की यह भूमिका लेखक के रूप में होती है, जिसे वह अपने पाठ के प्रति ईमानदारी से निभाने का प्रयास करता है। इस प्रकार अनुवाद प्रक्रिया के भीतर अनुवादक को तीन प्रकार्यों के कारण तीन भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। विश्लेषण के स्तर पर पाठक की भूमिका, अंतरण के स्तर पर द्विभाषिक की भूमिका और पुनर्रचना के स्तर पर लेखक की भूमिका निभानी पड़ती है, जो निम्न प्रकार है-

प्रक्रिया	अनुवादक की भूमिका	प्रकार्य
विश्लेषण	(मूल पाठ का) पाठक	अर्थग्रहण
अंतरण	द्विभाषिक	अर्थांतरण
पुनर्गठन	(अनूदित का पाठ) लेखक	अर्थ-संप्रेषण

7. निष्कर्ष

इस प्रकार अनुवादक पाठक के रूप में अर्थग्रहण करता है, द्विभाषिक के रूप में अर्थांतरण और लेखक के रूप में अर्थ-संप्रेषण करता है और कथ्यवस्तु को बिना कोई परिवर्तन किए बनाए रखने का प्रयास करता है।

हर भाषिक प्रक्रिया का अध्ययन भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है। अनुवाद भी एक भाषिक प्रक्रिया है, जिसमें भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों और नियमों के अनुप्रयोग के साथ-साथ बोधन की प्रक्रिया अनुवादनीयता की तकनीक और लक्ष्यभाषा में उसके प्रस्तुतीकरण को भी देखा जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में जो अनुवाद चिंतन हो रहा है, उससे अनुवाद सिद्धांत अपेक्षाकृत नए ज्ञानक्षेत्र और स्वायत्त विषय के रूप में उभरा है। यह ज्ञानक्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि इसमें सैद्धांतिक संदर्भ के साथ-साथ व्यावहारिक संदर्भ के आयामों में भी विस्तार आ गया है। अब यह शास्त्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर वैज्ञानिक रूप धारण कर रहा है, इसलिए अनुवाद को विज्ञान की संज्ञा दी जा रही है।